अख़बारों से लुप्त होता साहित्य

साहित्य समाज का आईना होता है। जिस समाज में जो घटता है, वही उस समाज के साहित्य में दिखलाई देता है। साहित्य के ज़रिये ही लोगों को समाज की उस सच्चाई का पता चलता है, जिसका अनुभव उसे खुद नहीं हुआ है। साथ ही उस समाज की संस्कृति और सभ्यता का भी पता चलता है। जिस समाज का साहित्य जितना ज्यादा उत्कृष्ट होगा, वह समाज उतना ही ज्यादा सुसंस्कृत और समृद्ध होगा। प्राचीन भारत की गौरवमयी संस्कृति का पता इसके साहित्य से ही चलता है। प्राचीन काल में भी यहां के लोग सुसंस्कृत और शिक्षित थे, तभी उस समय वेद-पुराणों जैसे महान ग्रंथों की रचना हो सकी। महर्षि वाल्मीकि की रामायण और श्रीमद भागवत गीता भी इसकी बेहतरीन मिसालें हैं। हिन्दुस्तान में संस्कृत के साथ हिन्दी और स्थानीय भाषाओं का भी बेहतरीन साहित्य मौजूद है। एक ज़माने में साहित्यकारों की रचनाएं अख़बारों में ख़ूब प्रकाशित हुआ करती थीं। कई प्रसिद्ध साहित्यकार अख़बारों से सीधे रूप से जुडे हुए थे। साहित्य पेज अख़बारों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हुआ करता था, लेकिन बदलते वक़्त के साथ-साथ अख़बारों और पत्रिकाओं से साहित्य ग़ायब होने लगा। इसकी एक बड़ी वजह अख़बारों में ग़ैर साहित्यिक लोगों का वर्चस्व भी रहा। उन्होंने साहित्य की बजाय सियासी विषयों और गॉसिप को ज्यादा तरजीह देना शुरू कर दिया। अख़बारों और पत्रिकाओं में फ़िल्मी, टीवी गपशप और नायिकाओं की शरीर दिखाऊ तस्वीरें प्रमुखता से छपने लगीं।

एक मुलाक़ात के दौरान इसी मुद्दे पर मशहूर फ़िल्म गीतकार जावेद अख़्तर साहब से गुफ़्तगू हुई थी। उन्होंने अख़बारों से ग़ायब होते साहित्य पर फ़िक्र ज़ाहिर करते हुए कहा था- यह एक बहुत ही परेशानी और सोच की बात है कि हमारे समाज में ज़ुबान सिकुड़ रही है, सिमट रही है। हमारे यहां तालीम का जो निज़ाम है, उसमें साहित्य को, कविता को वह अहमियत हासिल नहीं है, जो होनी चाहिए थी। ऐसा लगता है कि इससे क्या होगा। वही चीज़ें काम की हैं, जिससे आगे चलकर नौकरी मिल सके, आदमी पैसा कमा सके। अब कोई संस्कृति और साहित्य से पैसा थोड़े ही कमा सकता है। पैसा कमाना बहुत ज़रूरी चीज़ है। कौन पैसा कमा रहा है और ख़र्च कैसे हो रहा है, यह भी बहुत ज़रूरी चीज़ है। यह फ़ैसला इंसान का मज़हब और तहज़ीब करते हैं कि वह जो पाएगा, उसे ख़र्च कैसे करेगा। जब तक आम लोगों ख़ासकर नई नस्ल को साहित्य के बारे में, कविता के बारे में नहीं मालूम होगा, तब तक ज़िन्दगी ख़ूबसूरत हो ही नहीं सकती। अगर आम इंसान को इसके बारे में मालूम ही नहीं होगा तो फिर वह अख़बारों से भी ग़ायब होगा, क्योंकि अख़बार तो आम लोगों के लिए होते हैं। मैं समझता हूं कि हमें अपने अख़बारों पर नाराज़ होने और शिकायतें करने की बजाय अपनी शैक्षिक व्यवस्था को दुरुस्त करना होगा। हमें साहित्य को स्कूलों से लेकर कॉलेजों तक महत्व देना होगा। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में भी साहित्य को जगह देनी होगी। जब हम खुद साहित्य की अहमियत समझेंगे, तो वह किताबों से लेकर पत्र-पत्रिकाओं में भी झलकेगा।

वरिष्ठ साहित्यकार असग़र वज़ाहत साहब भी अख़बारों से ग़ायब होते साहित्य पर फ़िक्रमंद नज़र आते हैं। उनका कहना है कि अख़बार समाज के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं। मौजूदा दौर में अख़बारों से साहित्य ग़ायब हो गया है। इसे दोबारा वापस लाया जाना चाहिए, क्योंकि आज इसकी सख़्त ज़रूरत

है। अनेक वरिष्ठ पत्रकार और साहित्यकार इस पर चिंता व्यक्त करते रहे हैं। वरिष्ठ पत्रकार स्वर्गीय प्रभाष जोशी का मानना था कि अख़बारों से साहित्य ग़ायब होने के लिए सिर्फ़ अख़बार वाले ही ज़िम्मेदार नहीं हैं। पहले जो पढ़ने-लिखने जाते थे, वही लोग अख़बारों के भी पाठक होते थे। पहले जो व्यक्ति पाठक रहा होगा, उसने शेक्सपियर भी पढ़ा था। उसने रवींद्रनाथ टैगोर को भी पढ़ा था। उसने प्रेमचंद, शरतचंद्र, मार्क्स और टॉलस्टाय को भी पढ़ा था। लेकिन सरकार के साक्षरता अभियान की वजह से समाज में साक्षरता तो आ गई, लेकिन पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति कम हो गई। नव साक्षरों की तरह ही नव पत्रकारों को भी साहित्य की ज़्यादा जानकारी नहीं है। पहले भी साहित्य में रुचि रखने वाले लोगों को अख़बारों से पर्याप्त साहित्य पढ़ने को कहां मिलता था। वे साहित्य पढ़ने की शुरुआत तो अख़बारों से करते थे, लेकिन साहित्यिक किताबों से ही उनकी पढ़ने की ललक पूरी होती थी। अब लोग अख़बार पढ़ने की बजाय टीवी देखना ज़्यादा पसंद करते हैं। ऐसे में अख़बारों से साहित्य ग़ायब होगा ही।

वर्तमान में मीडिया समाज के लिए मज़बूत कड़ी साबित हो रहा है। अख़बारों की प्रासंगिकता हमेशा से रही है और आगे भी रहेगी। मीडिया में बदलाव युगानुकूल है, जो स्वाभाविक है, लेकिन भाषा की दृष्टि से अख़बारों में गिरावट देखने को मिल रही है। इसका बड़ा कारण यही लगता है कि आज के परिवेश में अख़बारों से साहित्य लोप हो रहा है, जबकि साहित्य को समृद्ध करने में अख़बारों की महती भूमिका रही है। मगर आज अख़बारों ने ही ख़ुद को साहित्य से दूर कर लिया है, जो अच्छा संकेत नहीं है। आज ज़रूरत है कि अख़बारों में साहित्य का समावेश हो और वे अपनी परंपरा को समृद्ध बनाएं। हिन्दी पत्रकारिता के सुप्रसिद्ध पत्रकार राजेंद्र माथुर अख़बार को साहित्य से दूर नहीं मानते थे, बल्कि त्वरित साहित्य का दर्जा देते थे। अब न उस तरह के संपादक रहे, न अख़बारों में साहित्य के लिए स्थान। साहित्य महज़ साप्ताहिक छपने वाले सप्लीमेंट्स में सिमट गया है। अब वह भी ब्रांडिंग साहित्य की भेंट चढ़ रहे हैं। पहला पेज रोचक कहानी और विज्ञापन में खप जाता है। अंतिम पेज को भी विज्ञापन और रोचक जानकारियां सरीखे कॉलम ले डूबते हैं। भीतर के पेज 2-3 में साप्ताहिक राशिफल आदि स्तंभ देने के बाद कहानी-कविता के नाम कुछ ही हिस्सा आ पाता है। ऐसे में साहित्य सिर्फ़ कहानी-कविता को मानने की भूल भी हो जाती है। निबंध, रिपोर्ताज, नाटक जैसी अन्य विधाएं तो हाशिये पर ही फेंक दी गई हैं।

इस सबके बीच अच्छी बात यह है कि आज भी चंद अख़बार साहित्य को अपने में संजोए हुए हैं। वक़्त बदलता रहता है, हो सकता है कि आने वाले दिनों में अख़बारों में फिर से साहित्य पढ़ने को मिलने लगे। कहते हैं, उम्मीद पर दुनिया क़ायम है। साहित्य प्रेमी भी अपने लिए अच्छी पत्र-पत्रिकाएं तलाश लेते हैं।

(लेखिका स्टार न्यूज़ एजेंसी में सम्पादक हैं)